E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2021; 3(2): 127-132
Received: 18-02-2021
Accepted: 22-03-2021

प्रियंका कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
ल. ना. मि. वि. वि., दरभंगा,
बिहार, भारत

Corresponding Author:
प्रियंका कुमारी
शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
ल. ना. मि. वि. वि., दरभंगा,
बिहार, भारत

दलित चेतना को जगाती है श्यौराज सिंह की कहानियाँ

प्रियंका कुमारी

सारांश
समकालीन हिन्दी साहित्य में जारी दलित-विमर्श को श्यौराज सिंह बेचैन ने अपने लेखन से धारदार अभिव्यकित दी है और यह सिद्ध किया है कि यथार्थ की जमीं से उपजा दलित साहित्य असल में मानवीय सरोकार का साहित्य है। अगर साहित्य को समाज का दर्पण माना जाता है तो दलित-साहित्य सौ फीसदी उस दर्पण का हिस्सा सिद्ध होता है। यह भोगे हुए यथार्थ का प्रमाणिक दस्तावेज है जो अनुभव की आँच पर तपकर हिन्दी साहित्यिक पटल पर अवतरित हुआ है। दलित साहित्य में जो यथार्थ-सत्य का ताप मौजूद है वैसा किसी अन्य साहित्य में परिलक्षित नहीं होता है। दलितों के संघर्ष, उत्पीड़न, अछूतपन, प्रतिकार, चेतना आदि को उजागर कर सामाजिक न्याय को स्थापित करना ही दलित साहित्य का मुख्य ध्येय हे। इस ध्येय-पूर्ति में दलित कहानियाँ सर्वाधिक सहायक साबित होती है। श्यौराज सिंह ने अपनी विविध कहानियों में इसी तथ्य को स्थापित किया है।

मुख्य शब्द: दलित साहित्य, सामाजिक न्याय, दलितों के संघर्ष

प्रस्तावना
दलित कहानियाँ अस्मितावादी लेखन पर आधारित रही है जिसमें 'भोगे हुए सच' को वरीयता दी गई है। यह प्रवृत्ति उत्तर आधुनिक युग विमर्श से उत्पन्न हुई है। इसलिए हिन्दी दलित कहानी को भी उत्तर आधुनिक युग की देन माना जाता है, जिसके उद्भावक दलित कहानीकार है। दलित कहानी का मूल प्रेरणास्रोत फुले और बाबा साहेब के वही क्रान्तिकारी, दलित-हितकारी विचार हैं, जिनकी शानों पर दलित-आन्दोलन परवान चढ़ा है। दलित कहानियों में व्याप्त चेतना ही वह तत्व है जो इस विधा को 'दलित कहानी' बनाती है। आलोचकों ने दलित-चेतना को सर्वोपरि माना है और कहा है कि "दलित-चेतना गुलाम को गुलामी से अवगत करा देती है। यह दलित साहित्य का महत्त्वपूर्ण जनन-बीज है। दलित चेतना ही अन्य लेखकों से दलित साहित्य की पृथकता रेखांकित करती है।" [1] दलित-चेतना बाबा साहब के विचारों और उनके संघर्ष से उत्पन्न हुआ है। गुलाम भारत में दलितों को उसके अस्तित्व का अहसास, उनमें मानवीय अधिकारों के प्रति जागृति और समाज में उनकी भूमिका की महत्त्वता जैसे तथ्यों को डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने ही पुष्टता दी। आजादी पश्चात 1950ई. में जब बाबा साहेब कृत भारतीय संविधान लागू हुआ तो देश के समस्त नागरिकों को समान अधिकार मिला तथा अस्पृश्यता अर्थात् छूत-अछूत के भेद को अपराध घोषित किया गया। इसके बाद दलित समुदाय के बीच डॉ. अम्बेडकर के विचार तेजी से

फैलने लगे। अम्बेडकर के आह्वान 'शिक्षित बनो' की चेतना ने दलितों का नाता शिक्षा से पुनः स्थापित कर दिया।

साठ के दशक में दलित-चेतना की झलक हिन्दी कहानियों में मिलने लगी। साठोत्तर कालखंड से पूर्व की दलित रचनाएँ करूणा एवं सहानुभूतियुक्त है पर इसके पश्चात दलित साहित्य अपने उग्र तेवर में प्रकट हुआ है। विद्रोह, संघर्ष, क्रान्ति आदि का आवाज दलित साहित्य में साठोत्तरी अवधि में ही हुआ है। आधुनिक दलित कथाकारों ने मोहन दास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, सूरजपाल सिंह चौहान, जयप्रकाश कर्दम आदि के बीच श्यौराज सिंह बेचैन ने एक नये विषय वस्तु को दलित साहित्य में पिरोया है।

अब तक इनकी दो कहानी संग्रह प्रकाशित हुई है- (i) 'भरोसे की बहन' और (ii) मेरी प्रिय कहानियाँ। इसके अतिरिक्त समकालीन विविध पत्र-पत्रिकाओं में भी इनकी कहानियों के प्रकाशन का दौर जारी है। श्यौराज सिंह 'बेचैन' की कहानियों में बखूबी सामाजिक व्यवस्था में हाशिए पर धकेले गए दलित वर्ग की पीड़ा अभिव्यक्त होती है। इनकी कहानियों के पात्र यथार्थ की जमीं से उपजे है, जो दलित जीवन की कड़वी सच्चाई को सहजता से प्रस्तुत करते हैं। सहजता और बेलौस अंदाज ही कहानीकार श्यौराज सिंह 'बेचैन' को अन्य कहानीकारों से पृथकता प्रदान करता है। इनकी कहानियों में प्रयुक्त यथार्थ उस दलित चेतना को संचरित कर रहा है जो दलितों के साथ ही सम्पूर्ण समाज के हित की बात करता है। ''सामाजिक लोकतंत्र की भावना और अवसरों की समानता की कामना'' [2] करता है। इन्होंने दलित यथार्थ के साथ ही सम्पूर्ण भारतीय समाज को शोधपूर्ण नजरिए से देखा और परखा है और इनकी अधिकांश कहानियाँ समसामयिक समस्याओं तथा सामाजिक सरोकार से जुड़े मुद्दों पर आधारित है नतीजतन इसमें प्रयुक्त दलित-चेतना की प्रासंगिकता बढ़ जाती है। इनकी कहानियों की दलित-चेतना की तलाश प्रकाशित संग्रह अनुरूप करना उचित प्रतीक होता है-

कहानीकार श्यौराज सिंह 'बेचैन' की प्रथम कहानी-संग्रह वर्ष 2010 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। इसमें कुल 10 कहानियाँ संग्रहित हुई है। संग्रह की कहानियों के बारे में बताते हुए स्वयं लेखक ने लिखा है- 'पिछले जन्म और अगले जन्म के बजाय मैं इस धरती, इसी दुनिया के यथार्थ का चितेरा रहा हूँ। यहाँ मेरे लेखन की सोद्देश्यता खुली और स्पष्ट है। इसमें किसी के काल्पनिक या किसी पर आरोपित ब्राह्मणवाद या गैर-ब्राह्मणवाद की तलाश नहीं की गई है।' संग्रह की कहानियाँ लेखकीय उक्ति के अनुकूल है और जब हम इन कहानियों का अध्ययन करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि पिछले दशकों में मानवीय, धार्मिक, नैतिक, संबंध आदि मूल्यों में जो गिरावट आई है उन सब का यथार्थ लेखक ने चित्रित किया है। संग्रह की कहानियाँ स्पष्ट स्वर में अभिव्यक्त करती है कि सामाजिक-परिवेश, जन-सरोकार, शासन-व्यवस्था एवं लोक-जीवन में अब किसी भी प्रकार का कोई आदर्श-मानक नहीं बचा है। सब अपनी सुविधानुकूल आचरण कर रहे है। दूसरे शब्दों में कहे तो इस संग्रह की कहानियाँ बहिष्कृत और वंचित भारत के टूटते सपनों को कथात्मक अभिव्यक्ति देती है।

इनकी 'संदेश' कहानी अन्तरजातीय विवाह का यथार्थ उकेरता है। दलित युवक भीमसिंह और जमींदार खानदान की युवती विनीता के प्रेमविवाह के परिणति को कथा-पटल पर रख कहानीकार स्पष्ट करता है कि प्रेम भी जातीय अभिमान को ध्वस्त करने में नाकामयाब सिद्ध होता है। तभी को सवर्ण कुल की नायिका विनीता जब अफसर बन जाती है तो दलित प्रेमी-पति भीमसिंह से कह उठती है- 'तुम अपनी जाति में आना-जाना छोड़ दो। वे इंसान नहीं है। वे गटर के कीड़े हैं। वे सब स्लमडाग है, शिड्युल्डकास्ट मतलब स्लमडॉग्स।' अपनी कौम की इस शर्मनाक परिभाषा को सुनक नायक भीमसिंह क्रोधित होकर विनीता के गाल पर चांटा जड़ देता है। सवर्ण पत्नी भी अपने दलित पति से भीड़ जाती है। दोनों अलग हो जाते है और सवर्ण पत्नी दलित पति से तलाक ले लेती है। तब दलित नायक पश्चाता है कि सवर्ण लड़की से प्रेमविवाह कर उसे क्या प्राप्त हुआ। विवाह करते ही उसके परिवार पर कहर बरप गया। इतना ही नहीं सवर्ण पंचों ने दलित भीमसिंह की पूरी कौम को तबाह कर दिया। कथा नायक सोचता है- 'इधर मैंने शहर में शादी की थी, उधर उसी रात मेरे गाँव में मेरे घर में आग लगा दी गयी थी। मेरी बहन का अपहरण किया गया था। मेरी माँ को गाय का गोबर चटाया गया था। मेरे पिता को मादर जात नंगा कर गाँव भर में घुमाया गया था।' इस कहानी में जैसा यथार्थ-दर्शन लेखक श्यौराज सिंह 'बेचैन' कराते है वैसी घटनाएँ आज भी हमारे समाज में घटित हो रही हे। प्रेमविवाह लड़के-लड़की करते हैं और समाज के मठाधीश इसकी सजा परिजनों को देते है।

इसी संग्रह की 'क्या करे लड़की' कहानी में भी प्रेम संबंध के परिणाम को कथानक लेखक ने बनाया है। अर्न्तलजातीय प्रेम संबंध के उजागर होते ही कैसे माँ-बाप अपने बच्चों के शत्रु बन जाते हैं, कैसे समाज के डर से मुहब्बत का दंभ भरनेवाला प्रेमी पलायन कर जाता है और प्रेम गीत गानेवाले जोड़े लाशों में तब्दील

हो जाते हैं; इन सब का यथार्थ रूप दिखाते हुए कहानीकार श्री बेचैन सिद्ध करते हैं कि-

कौन बना है, किस का साथी,
देखी सब ने अपनी जाति?

यही कड़वा सच है हमारे समाज का। प्रेमगीत गानेवाले जोड़े हो या फिर सामाजिक समरसता का पाठ पढ़ाते प्रबुद्धजन सबकी इच्छा शक्ति सामाजिक दबाव तोड़ डालती है और वे हार जाते है जातीय झड़ाबरदारों के समक्ष। विशेषकर प्रेमी जोड़ों के लिए समाज में ऐसा दुष्चक्र रच दिया जाता है कि जिसकी परिणति उनकी लाश बनकर सामने आती है। वस्तुतः हमारा सामाजिक ताना-बना ऐसा बुना हुआ है कि जहाँ 'प्रेम' करने से, अर्न्तसजातीय विवाह करने से परिवार की इज्जत आबरू नष्ट हो जाती है और इस स्थिति में परिजन अगर प्रेमी जोड़ों की हत्या कर देते है तो उन्हें जातीय शुरमा समझा जाता है, उनकी मान-मर्यादा में चार चाँद चमक उठते हैं, 'संदेश' और 'क्या लड़की' जैसे कहानियों के माध्यम से लेखक श्यौराज सिंह 'बेचैन' इसी तथ्य को उद्घाटित कर चेतना जगाते है कि जातीयता की आग हर दृष्टिकोण से खतरनाक है। यह व्यक्ति को निगल जाता है और मानवीयता, पवित्रत् कहलानेवाला 'प्रेम', रिश्ते-नाते सब इसके आगे गौण है। इसके रहते प्रेम-सौहार्द कभी परवान नहीं चढ़ सकता।

इसी तरह इस कथा संग्रह की मुख्य कहानी 'भरोसे की बहन' के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि इसके जरिए लेखक ने दलितों के उत्थान हेतु नव-चिंतन का सृजन किया है। कहानी परिस्थितियाँ जीवन्त और यथार्थनुकूल है। कहानी का नायक रामभरोसे जीवन की तमाम बुनियादी सुविधा से वंचित है फिर भी वो अपने पारिवारिक-दायित्व, दुख-दर्द को परे कर दलित-उत्थान-हितार्थ राजनीति कार्यकर्ता की भूमिका निभा रहा है। राम भरोसे को भरोसा है कि राजनीति बदलेगी और बहन जी, दलितों के सत्ता प्राप्त करते ही दलित उत्थान हो जाएगा। पर भरोसे की पत्नी के विचार इसके उलट है और वो पूरी कहानी में रामभरोसे के राजनीतिक कार्यकर्ता होने की स्थिति पर व्यंग्य कसती है- 'अपनी हालत देखो। गैर जात तुम्हें जानवर से हूँ गयौ-गुजरो समझत हैं, के नायं? तुम अपने मन में चाहे जो बने फिरौ, पार्टी में जाइकैं तो न तुम भैन जी के रहे न गैर कौम के। तुम्हारी गति धोबी के कुत्ते जैसी हो गयौ, न घर के रहे न घाट के.....' पर नायक भरोसे का विश्वास अपनी भैन जी (बहन) में अटूट है। उसकी निष्कलंक आस्था और समर्पण से चेतना-सम्पन्न व्यक्ति भी अचंभित हो उठता है। वो दलितों को भैन जी के समर्थन में एकजुट बनाता है। दलित सत्ता पर काबिज हो इसके लिए वो हर कुर्बानी देने को आतुर है। फीस के अभाव में उसके बच्चे भीमा का नाम स्कूल से कट जाता है पर वो अपने राजनीतिक कार्यकर्ता के कर्तृत्वम से विमुख नहीं होता है।

इस कहानी के संवादों में बाबा साहेब के विचार भी समाहित है जो अपनी पत्नी से बहस क्रम में राम भरोसे व्यक्त करता है। भैन जी की रैली में जी-जान से तैयार कर रामभरोसे पूरे गाँव के दलितों को लखनऊ लेकर जाता है और 'कायमसिंह मुर्दाबाद, छायावती जिंदाबाद, बहन जी संघर्ष करो, हम तुम्हारे साथ है।' जैसे नारों को भी लगाता है। सफल रैली के बाद आने के क्रम में रेलवे जंक्शन पर भगदड़ मच जाती है। अफरा-तफरी में सैकड़ों लोग घायल होते हैं दर्जनों मौत की भेट चढ़ जाते हैं। भरोसे भी मृतसन्न अवस्था में अस्पताल पहुँच जाता है और उसके कानों में यह आवाज सुनाई पड़ती है- 'कितनी खुदगर्ज है बहन जी, इन्हीं के लोग मर रहे है। अस्पतालों में पड़े है और वे खुद दिल्ली उड़ गयी है। क्या ऐसे बेदर्द नेता ही अछूत-बहुजन का कल्याण करेंगे?' इस कहानी को पूरी तरह पढ़ने के बाद पाठकों को आसानी से ज्ञात हो जाता कि, इसकी पृष्ठभूमि लखनऊ में आयोजित बसपा की वह विशाल रैली है जिसमें सैकड़ों दलितों की जाने गई थी। लेखक श्यौराज भी स्वयं राजनीति कार्यकर्ता रहे है और इस सत्य घटना को उन्होंने 'भरोसे की बहन' कहानी का आधार पर बनाया है परंतु बाकी कथानक कथाकार की अपनी सामाजिक दृष्टि से उपजी है और वही इसे विशिष्टता प्रदान करता है। दलित राजनीतिक सत्य को बयाँ करती यह कहानी सामान्य दलितों की भावनाओं, समाज की स्थिति और दलित उद्धार के लिए अति आवश्यक शिक्षा का हश्र भी बयाँ करता है। इस कहानी की दलित-चेतना स्पष्ट है- 'दलित, जीवन के लिए संघर्ष करता है, पलायन नहीं।' चिंतन के स्तर पर देखे तो यह कथा आज की राजनीति का यथार्थ है। जहाँ सामान्य कार्यकर्ता समाज हित में बली चढ़ जाता है और नेता सत्ता की मलाई चाटने में तल्लीन हो जाते हैं।

लेखक ने भारतीय शिक्षा-व्यवस्था और दलित समुदाय की इसकी आड़ में होनेवाले शोषण-उत्पीड़न का यथार्थ चित्रण किया है। उच्च शिक्षा, दलितों एवं नारियों की जो कारूणिक स्थिति है उसका जीवन्त दर्शन 'शोध-प्रबन्ध' शीर्षक कहानी से होता है। यह कहानी उच्च शिक्षा जगत के स्याह हिस्से को उजागर करती है। शोध-प्रबन्ध की नायिका 'रीना' अपने सवर्ण शोध-निदेशक की वासना की शिकार बन जाती है। यह कहानी सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त उन विडम्बनाओं की ओर

भी इंगित करता है जिसके कारण दलित महिलाओं को दोहरी मार झेलनी पड़ती है-एक दलित होने की, दूसरी स्त्री होने की। पढ़ी-लिखी होने के बावजूद नायिका रीना को दोनों मार झेलनी पड़ी है। एक तरफ जहाँ दलित होने के चलते कोई सवर्ण प्राध्यापक उसका निदेशक बनने को तैयार नहीं होता है और उसे न चाहते हुए दर-दर की ठोकरें खानी पड़ती है। फिर जब सवर्ण प्रो. प्रताप सिंह रीना का शोध निदेशक बनता है तो उसकी शोधात्मक दृष्टि रीना के जिस्म में उतरने लगती है। भोग्या बनी रानी गर्भवती हो जाती है तो शिकारी प्रोफेसर उसे गर्भपात की सलाह देता है। पर रीना कहती है- 'सर आप 'कोर्ट मैरिज' कर लीजिए? मेरा आपका यही समाधान हो सकता है.....।'

'देखो रीना माँस खानेवाले गले में हड्डियाँ लटका कर नहीं घूमते। ये इंसानी कमजोरियाँ है जिसे कुदरत ने ज्यादातर स्त्री–पुरुषों के व्यक्तित्व में समाहित की है।.....' बेटी समान छात्रा से जो गुरुजी जिस्मानी संबंध कायम करते समय यह दुहाई देता है कि 'प्रेम में न उम्र देखी जाती है, न रंग-रूप न जाति और न धर्म। बस एक मात्र दिल की दिलदारी देखी जाती है।' वहीं गर्भवती छात्रा से पिंड छुड़ाने के लिए बताता है कि तुम 26 साल की हो और मैं 50 से ऊपर हूँ। मेरे साथ शादी करोगी तो तुम्हारे यौवन की बगिया में पतझड़ का बीजारोपण हो जाएगा। गुरु-शिष्या संबंध हमारे समाज में अक्षम्य पाप है। फिर भी मटुकनाथ जैसे प्रोफेसर और जुली जैसी छात्रा इसे पवित्र 'प्रेम' का नाम देते है और दैहिक कामाग्नि को शांत करते है। ऐसे अस्वीकार संबंधों से सामाजिक वातावरण ही नहीं प्रभावित होता है बल्कि कई मानवीय जिंदगी भी उजड़ जाती है। प्रेम वासना नहीं और ना ही वासना प्रेम की जगह ले सकता है। वासना शांत होते ही ऐसे संबंधों का सच पटल पर स्वतः आ जाता है।

'नॉन रिफंडेबल' कहानी समीचीन दौर में शिक्षा के व्यापार बन जाने और शिक्षा जगत से गायब होते नैतिक मूल्यों की परत खोलता है। भारतीय संस्कृति में जिस सादगी, नैतिकता का सबक शैक्षणिक क्षेत्र के लिए निर्धारित किया गया है वो सब 'कॉन्वेंट मॉडल शिक्षा पद्धति से गायब है। इससे ऐसी संस्कृति फैल रही है कि गरीब के बच्चे का बेहतर शिक्षा ग्रहण करने का स्वप्न दिवास्वप्न बन जाएगा। कहानी में लेखक ने दिखाया है कि कॉन्वेंट स्कूल में अपने बच्चें को पढ़ाने की हरसत एक दलित को कैसे चुकानी पड़ती है। जमीन बेचकर स्कूल को डोनेशन दलित चंदन दे देता है पर बाद में बच्चे का एडमिशन ना कराने का फैसला लेता हे तो स्कूल प्रबंध बताता हे कि डोनेशन की राशि 'नॉन रिफंडेबल' है। चंदन का बेटा सूरज बीमार पड़ जाता है तो प्राईवेट अस्पताल का डॉक्टर भी खून चूसने पर उतारू हो जाता है। बेटे की बीमारी और डोनेशन के 'नॉन रिफंडेबल' के बीच व्यवस्था का शिकार बने चंदन के प्राण-पखेरू उड़ जाते है। पत्नी सुक्खो मृत पति और बीमार बेटे के बीच द्वन्द्व में सोचती है–

'दुखों-संतापो और अभावों के अलावा कुछ भी तो रिफंडेबल नहीं था वहाँ। एक बार कूं जकदूत के हाथनु तें प्राण लौट सकत है। पर स्कूल के मैनेजर प्राइवेट डॉक्टर के हाथ गए डोनेशन और फीस के पैसा नांय लौटि सकत।' समाज के निचले पायदान के लोगों की मुश्किलें इस पूँजीवादी दौर में कितनी बढ़ गई है और उसने कैसे मूलभूत आवश्यकताओं को व्यवसाय बना दिया है उसी का यथार्थ श्यौराज सिंह 'बेचैन' इस कहानी के माध्यम से प्रकट करते है। बाजारीकरण से उपजे व्यवसायिक सोच के कारण शिक्षा के मंदिर और धरती के भगवान का चरित्र बदल गया है, दूषित हो गया। इसके माध्यम से लेखक इस चारित्रिक गिरावट में सुधार लाने, व्यवस्था बदलने की चेतना जागृत करता है।

इसी तरह से संग्रह की 'रावण' कहानी भी सामाजिक व्यवस्था के क्षरण को उकेरता है कि कैसे चमार जाति का मूलसिंह सारी प्रतिभा रहने के बाद भी रामलीला का 'रावण' इसलिए बनने से वंचित रह जाता है कि वो दलित है, अछूत है। भले ही खलनायक का किरदार हो पर अंगद का रोल करने वाला सवर्ण उसके पाँव को कैसे हाथ लगा सकता है। गाँव में जातीय प्रताड़ना से आहत मूलसिंह शहर में बसेरा बना लेता है। पर रामलीला में रावण नहीं बनने देने के लिए पीटने वाले सवर्णों को जब मूलसिंह से जमीन लिखवाने की जरूरत पड़ती हे तो वे उसे दिल्ली से मिट्टी का वास्ता देकर गाँव ले आते है। अपनी इस कहानी के जरिए लेखक धनलोपु, स्वार्थी सवर्णों और भोले-भाले दलितों के चरित्र का यथार्थ उजागर कर इस तथ्य को स्थापित करता है कि समाज में जो समस्या व्याप्त है उसके असल जिम्मेवार ऐसे ही दोहरे चरित्रवाले लोग है जो नियम, पाबंदी, उसूल और सामाजिक मर्यादा को खंडित कर अपना हित साध रहे हैं।

मानवीय त्रासदी के इस दौर में 'ओल्ड एज होम' की प्रासंगिकता दिन-ब-दिन बढ़ रही है। पर श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने 'ओल्ड एज होम' कहानी में एक अलग ही यथार्थ से अवगत कराया है। अपनी बची-खुची जिंदगी को किसी तरह से काटने के अंदाज में जीनेवाले 'ओल्ड एज होम' के लोगों में भी जातीय भावना कूट-कूटकर भरी है। वर्तमान दौर में जाति किस तरह से हर जगह हावी है इसे परिलक्षित कर इस कहानी में लेखक ने लिखा है- 'उठते-बैठते, खाते-पीते, आते-जाते हर कोई

जाति पूछने लगा है। जाति के दर्जे के हिसाब से व्यवहार करने लगा है। जाति का होना एक सच है पर एक जाति बुरी दूसरी अच्छी, एक नीची, दूसरी ऊँची कैसे हो सकती है।' यह सवाल हर किसी के मन में स्वाभाविक तौर पर उठता है, फिर जातीय भेदभाव कायम है तो इसका एक मात्र यही कारण दिखाई पड़ता है कि व्यक्ति जन्म से ही एक ऐसे वातावरण में साँस लेता है जहाँ जाति-धर्म हावी रहता है और धीरे-धीरे यह मानवीय चेतना पर हावी हो जाता है। तभी तो तेजगुलाम अपनी जाति छुपाने, हीनताबोध से बचने के लिए माँ-बाप को 'ओल्ड एज होम' भेज देता है। पर ज्यों ही तेजगुलाम के पिता की जाति 'होम' के बूढ़ों को पता चलती है सब उससे दूरी कायम कर लेते हैं। दलित बूढ़ा अपनी डायरी में लिखता है- ''आज तो देश की आजादी का दिन है। आज आश्रम में झंडा फहराया गया। तय था कि जो सबसे सीनियर सिटीजन होगा वही झंडा फहराएगा। सो वह तो मैं ही था। पर चूँकि जाति जाहिर हो चुकी थी। इसलिए झंडा फहराने की तो नौबत ही नहीं आयी। बल्कि आज मुझे प्रसाद भी दूर ही से पकड़ाया गया था। आज देश की आजादी मुझ अछूत को गुलामी सी क्यों महसूस हुई? आजादी के मायने मेरे लिए केवल इतने हुए कि मुझे ऐसा आजाद किया कि बहिष्कृत कर दिया। कौन मानेगा कि इन बूढ़ों में जातिभेद सबसे ज्यादा होता है।'' [3] दलित होने की प्रताड़ना झेलनी पड़ती है औ 'मौजी' खुदकुशी कर लेता है। ओल्ड एज होम जैसी जगह जहाँ उम्र के आखिरी पायदान में पहुँच चुके लोग रहते हैं, वैसी जगह जातीय भावना की अधिकता अचरज का बोध कराती है, क्योंकि इस उम्र तक लोग जीवन की हर सच्चाई से अवगत हो चुके होते हैं तो क्या यह संभव प्रतीक होता है कि प्रबुद्ध और शिक्षित लोगों को जातीयता का सच पता न हो। इस कथा में वर्णित लेखक श्यौराज सिंह 'बेचैन' का यथार्थ बताता है कि जातिबोध घातक बीमारी सदृश्य है जो स्वयं का ही नहीं दूसरे का भी, उससे भी आगे बढ़कर देखें तो सम्पूर्ण समाज के लिए खतरनाक है। 'होनहार बच्चे' शीर्षक कहानी में भी लेखक ने प्रौढ़ उम्र के लोगों में ही जातीय गुमान, उन्माद के दर्शन कराए हैं।

वस्तुतः इस संग्रह की 'रावण', 'ओल्ड एज होम' और 'होनहार बच्चे' शीर्षक कहानी भले ही अलग-अलग है परंतु इन तीनों ही कहानियों के जरिए लेखक श्यौराज सिंह 'बेचैन' भारतीय समाज में गहराई से जड़े जमाए बैठे, 'कुंडली मारे नाग सदृश्य' वर्ग-जाति भेद छूत-अछूत जैसी धारणा का सम्पूर्णता के साथ भान कराते हैं। साथ ही लेखनी का ऐसा शल्य प्रयोग करते है कि धर्म-आचार-सम्मत रचित जातीय पाखण्ड बेलौस हो जाता है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक तौर पर नीचली जाति के लोगों को जाल बिछाकर फँसाया जाता है और फिर अपना उल्लू सवर्ण कैसे सीधी कर लेते है, जैसी कुटील चालों का खुलासा करके जातीय व्यवस्था की चूले हिलाने में समर्थ प्रतीक होते है। यह तीनों ही कहानी दलित-चेतना को जगाती है और उनमें सहजता से किसी पर विश्वास न करने की भावना विकसित करती हे। इसके अलावा दलितों को दास बनाए रखने हेतु आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक तौर पर जो नीति-रीति हमारे यहाँ कायम है उसके प्रति भी दलितों को चेतनशीलता ये कहानियाँ प्रदान करती है।

इस संग्रह की समस्त कहानियाँ संघर्षमय गुणयुक्त है। कहानियों के पात्र जीवन्त है और ये चीखते-चिल्लाते है तो प्रेम भरी रसवाणी भी प्रकट करते है। शोषण के साथ प्रतिकार भी मौजूद है। जिस तरह की विवरण शैली, भाषिक मौलिकता, जनपदीय शब्द और पात्रोंनुकूल भाषा-व्यवहार का प्रभावी प्रयोग इस कहानी-संगह में लेखक ने किया है, उससे यथार्थ की विश्वसनीयता बढ़ जाती है और कहानी में रोचकता स्वतः प्रविष्ट हो जाती है। यह आधुनिक दलित-विमर्श को नवीन मार्ग सुझाती है और साम, दंड एवं भेद की सवर्णवादी नीति ने कैसे दलितों को सामाजिक संरचना से बेदखल कर रखा है इसका भी खुलासा 'भरोसे की बहन' कथा-संग्रह कर देता है।

पहले कहानी-संग्रह प्रकाशन के कुल नौ वर्षो बाद 2019 में राजपाल एण्ड संन्स प्रकाशन से कहानीकार श्यौराज सिंह 'बेचैन' का दूसरा संग्रह 'मेरी प्रिय कहानियाँ' प्रकाशित हुई। 9 कहानियाँ के हिसाब से यह संग्रह बड़ा नहीं है पर जब हम इन कहानियों में व्यकक्त चेतन प्रवाह को देखते हैं तो ज्ञात हो जाता है कि इसका दायरा विशाल है। इस संग्रह की सबसे बड़ी खासियत है इसकी भूमिका जिसे लेखक ने स्वयं लिखा है। भूमिका-लेखन में लेखक श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने जिन तीखे और मारक सवालों को उठाया है उसकी गूँज अर्से तक साहित्यिक पटल पर प्रतिगूंजित होती रहेगी। हिन्दी कहानी आन्दोलनों पर सवालिया निशान लगाते हुए कथाकार 'बेचैन' ने बताया है कि सौ साल के इतिहास में कहानी लिखनेवाले विशेष लेखक रहे है और इन लोगों ने जान बूझकर बहिष्कृत एवं उपेक्षित समुदाय को अपनी कहानियों के केन्द्र में नहीं रखा। नई कहानी आन्दोलन को कटघरे में खड़ा कर श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने लिखा है- ''नई कहानी भी उतनी नई नहीं थी कि 'ठाकुर का कुँआ' की गंगी, 'कफन' का घीसू, माधव स्वयं अपनी कहानी कह पाते। सवाल यही है कि नई कहानी में नया क्या था?'' [4]

'क्रीमी लेयर' कहानी के जरिए लेखक ने आरक्षण को एक नए नजरिए से देखा है। कहानी का नायक जो सवर्ण है देश-विदेश से उच्च शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात भी दलितों को अवसर देने की सरकारी नीति और उसके प्रतिनिधित्व पर सवाल उठाता है और इसे सवर्णों के हितों-अधिकारों पर कुठाराघात मानता है। जबकि कथानायक की पत्नी दलित हितों की जबरदस्त पैरोकार है। नायक-नायिका के विमर्श बूते आगे बढ़ती यह कहानी आरक्षण से जुड़े वैचारिक द्वन्द्व को रेखांकित करते है तो नायिका प्रणीता दलित-पीड़ा को अभिव्यक्त कर सवर्णों के पूर्वाग्रह से ग्रसित मानसिकता को बदलने का प्रयास करती है।

दलित जातियों के वोट को हथियाकर सत्ता-सुख भोग करनेवाले नेताओं का भी 'क्रीमी लेयर' कहानी सच उजागर तब कर देता है जब नायिका प्रणीता कह उठती है- ''मैं क्यों मायावती के साथ खड़ी होऊँ? वे कौन-सी गाँव-गाँव में हुई सरकारी स्कूलों की हत्याएँ रोक पाई? उन्हीं के समय में लखनऊ से लेकर गाजियाबाद तक विकसित की गई आवास विकास कॉलोनियों में कही कोई सरकारी स्कूल खोला मायावती ने?'' [5] चुभते यथार्थवादी सवाल कहानीकार श्यौराज सिंह 'बेचैन' के लेखन का मूल स्वभाव है। जो पात्रों को धरातल से जोड़ देता है और मूल समस्या-समाधान स्वतः उभरकर पाठकों के सामने आ जाता है। दलितों की पीड़ा का अंत नहीं होने का एक बड़ा कारण राजनीति का दोहरा चरित्र भी है। विशेषकर दलित नेताओं ने इस जाति के लोगों को जिस तरह से ठगा है उसी के परिणामस्वरूप आजादी के सौ वर्षों बाद भी दलितों की नियति नहीं बदली है। दलित-उत्थान के नाम पर सब दलितों के हिस्से की रोटी भी खा गए। नतीजतन दलित-नेता तो सत्ता की रेशमी चादर ओढ़ने लगे और दलितों की बेहाली, बेकारी, भूखमरी आदि यथावत है।

'बस्स इत्ती-सी बात' कहानी के जरिए भी लेखक श्यौराज सिंह 'बेचैन' ने उसी सामाजिक विद्रूपता पर विमर्श किया है जिसके चलते असमानता का अंधकार बुलंद हुआ है। गौर करें तो स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय समाज में मुख्य रूप से महिला और दलित वर्ग को अधिकार हीन बनाया गया है। महिलाओं को बेबस पितृसत्तात्मक समाज ने बनाया है तो दलितों की बेहाली जातीय व्यवस्था से उपजी है। 'बस्स इत्ती-सी बात' इसी सामाजिक खामी को उकेरता है और अंततः यह साबित करता है कि बिना पितृसत्ता एवं जातीय व्यवस्था का सर्वनाश हुए न तो महिलाओं का समुचित होगा और ना ही दलित गौरवान्वित बनेंगे।

निष्कर्ष

कुल मिलाकर देखें तो इनकी कहानियाँ भारतीय समाज के समकालीन यथार्थ को उकेरती है। इसमें सामाजिक क्रूरता है, विषमता है, मानवता एवं बंधुत्व का हनन है तो संघर्ष का सजीव चित्रण भी है, समाज की जड़ता दूर करनेवाली चेतना भी तीव्रतम स्वरूप में मौजूद है। इससे यह 'दलित-चेतना' भी प्रतिध्वनित होती है कि अगर स्थितियाँ नहीं बदलती है तो विद्रोह एवं आक्रोश रूपी संघर्ष को हथियार बनाकर परिवर्तन का सूत्रपात किया जा सकता है। इसकी कहानियाँ दलित-विमर्श के दायरे को विस्तृत बनाती है और इस चेतना का विकास करती है कि दलित महिला सबसे अधिक विषमता का शिकार है। दलित महिला विकास ही दलित समाज विकास का सृजन करेगा।

संदर्भ

1. 'दलित नाटक की आलोचना' लेखक-सर्वेश कुमार मौर्य प्रकाशक-स्वराज प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष-1997, पृ.-135
2. 'हँस' संपादक-संजय सहाय, अंक-04, नवम्बर-2019 प्रकाशक-अक्षर प्रकाशन प्रा. लि. नई दिल्ली, पृ.-75
3. 'भरोसे की बहन' लेखक-श्यौराज सिंह 'बेचैन', प्रकाशक वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष-2010, पृ.-05
4. 'मेरी प्रिय कहानियाँ' लेखक-श्यौराज सिंह 'बेचैन', प्रकाशक-राजपाल एण्ड संस प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष-2019, पृ.-09
5. वही, पृ.-24